

“पत्यौ प्रव्रजिते नष्टे, क्लीबेऽथ पतिते मृते। पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते॥”

(देखो नारदीय मनुसंहिता भवस्वामिभाष्यसंहिता साम्बशिवशास्त्रिणा सम्पादिता त्रिवेन्द्रम् सन् 1929 पृ. 144) यहां उसी ऊपर उद्धृत श्लोक को ही थोड़े से शब्दभेद से दिया गया है। मुख्य बात यह कि ‘पत्यौ’ शब्द का प्रयोग है जो लौकिक व्याकरण की दृष्टि से भी सर्वथा ठीक है। इसका अर्थ वही है जो ऊपर दिया जा चुका है। वृद्ध मनुस्मृति अ. 9 पृ. 111 में भी यह श्लोक पाया जाता है। अग्निपुराण अ. 154 में भी यही श्लोक पराशर स्मृति के पाठ के अनुसार विद्यमान है।

गौतम धर्म के सूत्र के मस्करिभाष्य में अपतिरपत्यलिप्सुदेवरात् 18/4 की व्याख्या में लिखा है।

अपतिः—अविद्यमान भर्तृका अयोग्यपतिर्वा तथा च बृहस्पतिः ‘नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतितेपतौ। पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते’ इति।

(देखो पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ पूना द्वारा सम्पादित “धर्मकोष” व्यवहार कांड पृ. 1012) इससे ज्ञात होता है कि बृहस्पति स्मृति में भी यह श्लोक पाया जाता था जो स्मृति इस समय सम्पूर्णतया उपलब्ध नहीं होती।

इनके अतिरिक्त चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला कार्यालय बनारस से मनुस्मृति कुल्लूक भाष्य सहित संवत् 1992 में प्रकाशित हुई थी उसके अन्त में वर्तमान मनुस्मृति में अविद्यमान किन्तु अन्य ग्रन्थों में मनु के नाम से वर्णित श्लोकों को ‘स्मृति चन्द्रिका’ नामक सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ के आधार पर उद्धृत किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि पहले मनुस्मृति में भी यह श्लोक पाया जाता था। जो श्लोक इतनी स्मृति-पुराणादि में पाया जाता हो उसको ऐसे ही ढाला नहीं जा सकता।

(2) मनुस्मृति अ. 9 श्लोक 72 भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है जो निम्न लिखित है :

“विधिवत् प्रतिगृह्यापि, त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्, व्याधिताम् विप्रदुष्टां वा, छद्मना चोपपादिताम्॥” इसका अनुवाद साधुचरणप्रसाद जी ने वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई में मुद्रित धर्मशास्त्र संग्रह के पृष्ठ 193 में इस प्रकार दिया है—

“वर को उचित है कि अलक्षण दोष वाली रोगिणी, मैथुन संसर्ग वाली अथवा ठगहारी करके दी हुई कन्या को विधिपूर्वक ग्रहण करके भी त्याग देवे।”

(3) नारदीय मनुसंहिता 12/32 में लिखा है :

“यस्तु दोषवती कन्याम्, अनाख्याय प्रयच्छति। दोषे तु सति नागः स्यात्, अन्योन्यं त्यजतोस्तयोः॥” साधुचरणप्रसाद जी ने धर्मशास्त्र संग्रह पृ. 194 में इसका अनुवाद यों दिया है:—

“यदि कन्या के दोष को छिपाकर वर को कन्या दी जाए तो वर कन्या को त्याग देवे और वर के दोष को छिपाकर कन्या से विवाह किया जाए तो कन्या वर को त्याग देवे इस में कोई अपराधी न होगा॥” (धर्मशास्त्रसंग्रह पृष्ठ 194)।

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में भी इस प्रकार धोखे से कराये गये विवाह को अवैध माना गया है जिस का आधार उपर्युक्त वचन प्रतीत होते हैं।

(4) मनुस्मृति अ. का निम्नलिखित श्लोक भी इस सम्बन्ध में विशेष विचारणीय है:

“प्रोषितो धर्मकार्यार्थं, प्रतिक्ष्योष्टौ नरः समाः । विद्यार्थं षड्शोऽर्थं वा, कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥

वन्धाष्टमेऽधिवेद्याब्देदशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननीं सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥”

(मनु अ. 9/76/81)

इस का अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में इस प्रकार दिया है:

“पुरुष के लिए भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (विवाह से 8 वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे) सन्तान होकर मर जावे तो दशवें जब जब हो तब तब कन्या ही हो पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्ष तक और अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कर लेवे। वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उस को छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कर के उसी विवाहित पति के दायभागो सन्तान कर लेवे . . . इत्यादि सत्यार्थप्रकाश 27वीं वार पृ. 73

(5) मनुस्मृति 9/79 में लिखा है कि उन्मत्तं पतितं क्लीवम् अबीजं पाप रोगिणम्। न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्।

भावार्थ यह है कि यदि स्त्री ऐसे पति से द्वेष करती है जो उन्मत्त (पागल) है, धर्म का त्याग करके पतित हो गया है, नपुंसक तथा कोढ़ आदि भयंकर रोग से ग्रस्त है तो उसको विशेष दोष या दण्ड नहीं दिया जा सकता।

प्रस्तुत हिंदू कोड बिल की धारा 30 में इसी प्रकार की शर्तें रखी गई हैं जैसे पाठक लेख के प्रारम्भ में उद्धृत वाक्यों में देख सकते हैं।

(6) कौटिल्य अर्थशास्त्र धर्मस्थीय अधिकरण 3 अध्याय 2 में चाणक्य ने लिखा है:—

“नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्बिषी । प्राणाभिहन्ता पतितः, त्याज्यः क्लीवोऽथवापतिः॥”

“परस्परं द्वेषान्मोक्षः” धर्मस्थीय अ. 3/4/19

अर्थात् पति यदि नीच और पतित हो गया हो, परदेश चला गया हो (और उसके विषय में कुछ ज्ञात न हो तो नियत अवधि तक मनु के अनुसार जो अधिक से अधिक 8 वर्ष है प्रतीक्षा कर के) धार्मिक राजा से द्रोहादि भयंकर अपराधी, हत्यारा अथवा नपुंसक हो तो वह त्याज्य है।

परस्पर द्वेष से पति पत्नी का त्याग या सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है।

(2) यम स्मृति, कात्यायनादि से इसी प्रकार अन्य भी अनेक वचन उद्धृत किये जा सकते हैं किंतु इस विषय पर विचार पहले ही लम्बा हो गया है अतः उन्हें उद्धृत करते

ANNEXURE II

1343

हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था को ऐसा सुधारना चाहिये कि सम्बन्ध विच्छेदादि का विचार भी कभी विवाहित पति-पत्नी के मन में उत्पन्न न हों पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म का पालन जो हमारी प्राचीन संस्कृति के मुख्य तत्त्व हैं—यदि पति-पत्नी करें तो इस प्रकार के विधान सर्वथा अनावश्यक हो जाएं। सब समाज-हितषियों को मिल कर ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये। अत्यन्त विशेष आपत्ति, आकस्मिक मरण, असमर्थतादि में प्राचीन नियोग पद्धति का आश्रय लिया जा सकता है, किन्तु वर्तमान परिस्थिति में यदि इसे व्यावहार्य न माना जाय तो अत्यन्त विकट और जटिल अवस्थाओं में जहां अन्य कोई चारा ही न हो, सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति अन्तिम साधन के रूप में दी जा सकती है पर उसकी शर्तों को अत्यधिक कठोर बनाना चाहिए ताकि उसका दुरुपयोग न हो सके। पाश्चात्य देशों में तलाक को जो अत्यन्त सुलभ बना दिया गया है उसके कारण नैतिकता व सदाचार का अत्यन्त हास हो रहा है जो अवस्था अत्यन्त निन्दनीय है अतः हमें उसका अनुकरण न करना चाहिए। अतः जो धारा 30 मैंने इस लेख के प्रारम्भ में उद्धृत की थी उसमें निम्न संशोधन मुझे अत्यावश्यक प्रतीत होते हैं:

(1) ऐसा नियम बना दिया जाय कि विवाह के 8 वर्ष बाद तक कोई सम्बन्ध विच्छेद के लिए प्रार्थनापत्र नहीं दे सकता और न किसी को ऐसी अनुमति उस अवधि तक दी जायेगी। विश्वस्त-सूत्र से ज्ञात हुआ है कि 5 वर्ष की अवधि को इस बिल के प्रस्तोता संशोधन के रूप में स्वयं स्वीकार करने को उद्यत हैं यदि उसे 8 वर्ष तक बढ़ा दिया जाय तो अधिक अच्छा हो। इस बीच में बहुत अधिक सम्भावना यही है कि पति-पत्नी एक दूसरे के स्वभावादि से परिचित होकर सम्बन्ध-विच्छेदादि का विचार भी न करेंगे।

(2) नपुंसकता, पागलपन, कुष्ठ इत्यादि की चिकित्सा के लिए भी 8 वर्ष की अवधि देना उचित है। यदि भली-भाँति चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा करने पर भी लाभ न हो और पति-पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद पर ही उतारू हों तो इस 8 वर्ष की अवधि के पश्चात् उसकी अनुमति दी जा सकती है।

विवाह-विच्छेद विषयक धारा 30 के अतिरिक्त धारा 33 में 'अदालत अलहदगी' के विषय में कहा गया है कि:

“विवाह के दोनों पक्षों में से कोई भी व्यक्ति चाहे ऐसा विवाह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हो चुका है जिला अदालत को इस आधार पर अदालती अलहदगी की डिग्री प्राप्ति के लिये प्रार्थना कर सकता है कि दूसरा पक्ष—

(अ) प्रार्थी को एक ऐसे समय से छोड़ चुका है कि जिसकी अवधि 2 वर्ष से कम नहीं है।

(इ) ऐसे जुल्म या अत्याचार का दोषी हो चुका है कि जिस के फलस्वरूप प्रार्थी उक्त पक्ष के साथ रहने में भयभीत हो चुका है अथवा

(उ) असाध्य, सोजाक, आत्यंतिक व्याधि से पीड़ित हो रहा है जो कि प्रकट अवस्था में है तथा जो कि उसे प्रार्थी की ओर से नहीं लगी है तथा इतने समय से वह इस व्याधि से पीड़ित है जिसकी अवधि उस प्रार्थना-पत्र देने के सन्निहित काल से आरम्भ करके एक वर्ष से कम नहीं है।

(ऋ) एक भयानक प्रकार से कुष्ठ (कोढ़) से पीड़ित हो रहा है अथवा

(ए) विवाह की तारीख से लेकर उसे लगातार स्वाभाविक पागलपन हो चुका है अथवा

(ओ) दाम्पत्य काल के दौरान में व्यभिचार कर चुका है।”

इन नियमों में भी 1 और 2 वर्ष की अवधि के स्थान पर कम से कम 5 वर्ष की अवधि रखनी चाहिए। यह अदालती अलहदगी, संपूर्ण तथा विवाह विच्छेद से भिन्न है अतः न्यायाधीशों तथा अन्यो को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे दम्पती प्रेमपूर्वक साथ रहने को पुनः उद्यत हो जाएं।

पातिव्रत धर्म के महत्त्व के विषय में जो कहा जाता है वह ठीक ही है और इसमें सन्देह नहीं कि वह हमारी संस्कृति और सभ्यता के लिए विशेष गौरव की वस्तु है जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। दुःख की बात यही है पत्नीव्रत धर्म के महत्त्व पर हिन्दू समाज में उतना बल नहीं दिया जाता अन्यथा इतनी शोचनीय दशा न होती, और न इस प्रकार के नियमों की कोई आवश्यकता होती। बड़ौदा में सन 1931 से हिन्दू डाइवोर्स लॉ अथवा सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति का कानून विद्यमान है, किन्तु तब से अब तक उन जातियों की ओर से जहां पहले तलाक की प्रथा न थी केवल 43 की कोस हुए हैं जिन में मुख्य आधार पति की ओर से क्रूरता और परित्याग ही था।

अतः इन उपर्युक्त धाराओं की भी न जानते हुए अज्ञ जनता में उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए जो यह फैलाया जा रहा है कि इस बिल के अनुसार जब इच्छा होगी पति-पत्नी एक दूसरे का परित्याग कर देंगे और इस प्रकार हिन्दू जाति और उसकी संस्कृति का नाश हो जायेगा, यह बात सर्वथा असत्य है।

धारा 34 में स्पष्ट कहा गया है कि “कोई भी विवाह तब तक कानूनी तौर पर परित्यक्त हुआ नहीं विचारा जायेगा जब तक कि उस पर किसी समुचित आदालत द्वारा यह घोषित करते हुए डिग्री नहीं दी जाती कि ऐसा विवाह या तो विवाह-विच्छेद के लिये दिये प्रार्थना-पत्र पर खतम किया गया है अथवा किसी अन्य ऐसी कानूनी कार्यवाही में समाप्त किया गया है जिसमें विवाह का जायजपन (वैधता) विचारणीय विषय था।”

धारा 44—विवाह समाप्ति सम्बन्धी प्रत्येक डिग्री जो जिला जज द्वारा दी गई है वह हाईकोर्ट द्वारा पक्का होने का विषय होगी। इत्यादि इन नियमों का दुरुपयोग किसी भी अवस्था में न होने पाए और इन्हें नर्म न बना दिया जाय (जैसे कि पाश्चात्य देशों में है) यह चेतावनी देना आवश्यक है। “भारत में लगभग 90 प्रतिशत जातिभेद की दृष्टि से शूद्रों में आते हैं। जिनमें सम्बन्ध-विच्छेद की प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित है”, यह माननीय डा. अम्बेडकर का कथन कहां तक ठीक है यह मुझे ज्ञात नहीं। सम्भवतः इसमें कुछ अत्युक्ति हो। जातिभेद की अनिश्चितता के कारण भी ऐसा संभव है तथापि इसे मैं तलाक की प्रथा को उत्तम समझने अथवा उसे अपनाने की युक्ति के रूप में मानने को उद्यत नहीं। हां सर्वथा अन्तिम साधन के रूप में उपायान्तर न होने पर ही उसकी अनुमति अति विशेष अवस्थाओं में दी जा सकती है। मैंने ये बातें समस्त हितैषियों के विचारार्थ लिखी हैं। आशा है समाजहित और शास्त्रीय वचनों को ध्यान में रखते हुए इन पर विद्वान् लोग निष्पक्ष होकर विचार करेंगे। यदि वर्तमान शोचनीय परिस्थिति का अन्य कोई प्रतिकार हो सकता है तो उसका भी निर्देश करेंगे।

(हिन्दू कोड बिल पर विचार-5)

दत्तक विधान और संरक्षकता

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

हिन्दू कोड बिल के तृतीय भाग में दत्तक विधान अथवा गोद लेने विषयक नियम हैं और चतुर्थ भाग में अल्पवयस्कता (नाबालिगपन) और संरक्षकतादि विषयक। इन दोनों भागों में वर्णित मुख्य-मुख्य धाराओं पर मैं इस लेख में संक्षिप्त विचार करूंगा।

अभी तक हिन्दुओं में गोद लेने विषयक भिन्न-भिन्न प्रकार रहे हैं। भाग 3 में उन्हें एकरूपता देने का यत्न किया गया है जो प्रशंसनीय है।

‘गोद लेने के विषय में योग्यता’ शीर्षक की धारा 54 में कहा गया है कि कोई भी ऐसा कि हिन्दू पुरुष जिसके होश व हवास (स्वस्थ मानसिक अवस्था) कायम है। और अपनी आयु के 18 वर्ष पूरे कर चुका है, वह पुत्र गोद (दत्तक) लेने की योग्यता रखता है।

किन्तु शर्त यह है कि कोई भी हिन्दू पुरुष अपनी पत्नी की अनुमति ग्रहण किये बिना गोद नहीं लेगा। मेरी सम्मति में दत्तक पुत्र लेने के लिए 18 वर्ष की आयु सर्वथा अपर्याप्त है। कम से कम 25 वर्ष की आयु का नियम रखना चाहिये। जैसा कि मैं इस लेखमाला के प्रथम लेख में बता चुका हूँ इस कोड बिल के बनाने वालों ने हिन्दुत्व की रक्षा का ध्यान रखते हुए धारा 62 के अंश (3) में माता को दत्तक लेने का अधिकार दिया है, यदि बच्चे के पिता ने हिन्दू-धर्म को त्याग दिया हो।

यदि विधवा ने हिन्दू धर्म त्याग दिया हो तो धारा 61 के अंश (3) में उसके गोद लेने के अधिकार को समाप्त माना गया है। कोई भी हिन्दू धर्म प्रेमी इस भावना का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता।

‘गोद लिये जाने की योग्यता’ विषयक धारा 63 में बताया गया है कि कोई भी व्यक्ति तब तक गोद लिये जाने योग्य क्षमता नहीं रखेगा जब तक कि निम्नलिखित शर्तों के सम्बन्ध में तसल्ली नहीं हो जाती :

(१) वह हिंदू है।

(२) वह विवाहित नहीं है।

(३) वह पहले से ही गोद नहीं लिया जा चुका है।

(४) वह अपनी आयु के 15 वर्ष पूरे नहीं कर चुका है।

इनमें कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर आक्षेप किया जा सके। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि गोद लेने के विषय में वर्तमान हिंदू विधान (कानून) में विद्यमान जाति विषयक प्रतिबन्ध को हटा दिया गया है। वर्तमान कानून के अनुसार केवल उसी बालक को दत्तक के रूप में लिया जा सकता है जो गोद लेने वाले की अपनी जाति का हो। अब जाति-उपजातियों के प्रतिबंध को हटा दिया गया है। किंतु इतना ही प्रतिबंध रखा गया

है कि वह हिन्दू हो। इन शर्तों को न जानते हुए अथवा जान बूझकर भी कोड बिल विरोधियों की और से पत्रों में यह जो आन्दोलन किया गया, कि इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को चाहे वह मुसलमान व ईसाई भी क्यों न हो अब गोद लिया जा सकेगा, उसकी असत्यता स्पष्टतया ज्ञात होती है जाति विषयक प्रतिबन्ध की वस्तुतः इस विषय में कोई आवश्यकता व उपयोगिता नहीं, अतः आशा है उदार मनोवृत्ति वाले सभी समाजहितैषी इस धारा का वर्तमान रूप में स्वागत करेंगे। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले कूपमंडूकों का तो इससे अप्रसन्न होना स्वाभाविक है किन्तु इस संकीर्णता से समाज और राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। हां, जो अपनी कल्पित जाति-उपजाति तक दत्तक लेने के अधिकार को सीमित रखना चाहें उनको ये नियम ऐसा करने से रोकते नहीं, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है।

दत्तक विधान में एक मुख्य परिवर्तन जो प्रवर समिति ने किया है वह इस प्रकरण में उल्लेखनीय है। वर्तमान विधान के अनुसार दत्तक पुत्र विधवा की, जिस ने उसे गोद में लिया है, सारी सम्पत्ति पर अधिकार रख सकता था और इस के कारण बड़ी मुकदमेवाजी होती रहती थी और गोद लेने वाली विधवा की अवस्था बड़ी दयनीय हो जाती थी। अब धारा 68 में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि : (1) जहां पर कि इस कोड के आरम्भ होने के बाद कभी विधवा गोद लेती है उस द्वारा गोद लिया हुआ पुत्र:-

(अ) उस विधवा या उस की सौत विधवाओं (यदि कोई है) द्वारा उसके गोद लेने वाले पिता के वारिस होने के रूप में ऐसी जायजाद में से, जो कि उस गोद लेने के कार्य के पहले सन्निहित काल में विद्यमान थी, उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी, उस का आधा लेगा।

आशा है विचारशील जनता द्वारा इस नवीन नियम का जो अनुभव से लाभ उठा कर विधवा के प्रति सहानुभूति की भावना से बनाया गया है, स्वागत व अभिनन्दन किया जायेगा।

नाबालिग और उसके संरक्षक के सम्बन्ध में जो धाराएं भाग 4 में दी गई हैं, उनके सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। धारा 78 में हिन्दू नाबालिग (अल्पवयस्क) के स्वाभाविक संरक्षक के विषय में कहा गया है:-

किसी नाबालिग हिन्दू की निजता (फयतहण) तथा उसके साथ साथ उसकी सम्पत्ति के मामले में उसके स्वाभाविक संरक्षक हैं-

(आ) किसी बालक या अविवाहित कन्या के मामले में पिता और उस के बाद माता, किन्तु शर्त, यह है कि ऐसे नाबालिग का संरक्षण (धगतवहनख) जो कि अपनी आयु के तीन वर्ष समाप्त नहीं कर पाया है साधारणतया उसकी माता का होगा।

(इ) किसी नाजायज बालक अथवा अविवाहित कन्या के मामले में माता और उसके बाद पिता।

(उ) किसी विवाहित लड़की के मामले में उसका पति किन्तु शर्त यह है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति इस धारा के विधानों के अधीन किसी नाबालिग का संरक्षक होने का अधिकार नहीं रखेगा।

(अ) यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग चुका है।

(इ) यदि वह पूर्णतया और अन्तिम रूप में धारा 110 की उपधारा (1) में वर्णित रीतियों में से किसी रीति अनुसार संसार को त्याग चुका है।

धारा 81 में बताया गया है कि जहां स्वाभाविक संरक्षक हिन्दू धर्म को त्याग चुका है वहां उसकी अधिकार सत्ता का खंडन हो जायेगा। धारा 83 में बताया गया है कि किसी नाबालिग हिन्दू के संरक्षक का कर्तव्य होगा कि वह ऐसे नाबालिग का हिन्दू के रूप में पालन पोषण करे कोई भी हिन्दू धर्म से प्रेम रखने वाला व्यक्ति हिन्दुत्व पोषक इन धाराओं का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता। एक और बात जिसका इस प्रसंग में उल्लेख और समर्थन मुझे आवश्यक प्रतीत होता है वह नाबालिग बच्चों पर माता के अधिकार की स्वीकृति विषयक है। अब तक के विधान में यह ज्ञात हुआ है कि इसकी उपेक्षा की जाती थी, यद्यपि शास्त्रों के अनुसार माता का स्थान सबसे ऊंचा है। यहां तक कि मनुस्मृति अ. 2 श्लोक 145 में लिखा है कि 'उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता सहस्रतु पितृन्माता, गौरवेणातिरिच्यते।' अर्थात् आचार्य का स्थान 10 उपाध्यायों से भी बढ़ कर है, पिता का गौरव 100 आचार्यों और माता का 1000 पिताओं से भी बढ़ कर है।

इस दृष्टि से इन उपर उद्धृत धाराओं और धारा 82 के इस अंश का कि 'किन्तु शर्त यह है कि इस धारा में किसी भी ऐसी बात का होना नहीं विचारा जायेगा जो किसी भी व्यक्ति के संरक्षक का कार्य पूरा करने के लिए साधिकार कर सके यदि ऐसे नाबालिग की माता जीवित है और अपने ऐसे नाबालिग बच्चे की स्वाभाविक संरक्षिका होने की क्षमता या योग्यता रखती है।' हम अभिनन्दन करते हैं।

(हिन्दू कोड बिल पर विचार-6)

सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार

(पूर्वार्ध)

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

इस लेख में मैं उन धाराओं पर कुछ विचार करना चाहता हूँ जिनका सम्बन्ध 'स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार' के साथ है। पुत्रियों के उस सम्पत्ति में अधिकार पर मैं अगले लेख में विचार करूँगा। ये दोनों विषय ही बड़े विवादास्पद और कठिन हैं। मैंने स्वयं अनेक दिनों तक इन विषयों पर शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया है और मुझे यह लिखने में संकोच नहीं कि अभी तक मैं सर्वथा निश्चित परिणाम पर पहुँचने में पूर्णतया समर्थ नहीं हो सका तथापि अनेक विचारों को लेखबद्ध करना मुझे उचित प्रतीत होता है ताकि विचारशील जनता तथा विद्वन्मंडली उन पर गम्भीरता से विचार कर सके।

स्त्रियों तथा विधवाओं का सम्पत्ति में अधिकार होना चाहिए या नहीं और यदि होना चाहिये तो वह सीमित हो अथवा पूर्ण जैसा कि इस बिल की धारा 91 एवं 93 में उल्लिखित है। इन धाराओं में कहा गया है :

स्त्री की सम्पत्ति के प्रकार-(1) इस कोड के अस्तित्व में सम्पूर्णतया आने के बाद किसी स्त्री द्वारा जो भी सम्पत्ति प्राप्त की जायेगी वह निश्चयात्मक वा निजी (Absolute) उसकी सम्पत्ति होगी।

अपवाद-(2) उपधारा (1) में उल्लिखित कोई बात किसी ऐसी सम्पत्ति पर लागू नहीं होगी जो कि स्त्री द्वारा बतौर दान के या किसी वसीयतनामे के अधीन प्राप्त की गई है और जहाँ दान एवं वसीयतनामे की शर्तें स्पष्टरूप या आनुषंगिक रूप में ऐसी सम्पत्ति के बारे में सीमित अधिकार प्रदान करती है बशर्ते कि उक्त आनुषंगिक आदेश का उद्भव उस स्त्री जाति के कारण ही नहीं होता।

व्याख्या-इस धारा में 'सम्पत्ति में स्त्री द्वारा उपलब्ध चल और अचल उभय सम्पत्तियों का समावेश होगा, फिर चाहे यह प्राप्ति उसके विवाह से पहले या बाद हुई हो अथवा वैधव्यकाल के मध्य में हुई हो और चाहे वह उत्तराधिकारी के रूप में या किसी कार्य के फलस्वरूप अस्तित्व में आई हो या बंटवारे पर अथवा किसी सम्बन्धी या अन्य व्यक्ति द्वारा किसी दान से या अपनी चातुरी या प्रयत्न से या खरीद से या बहुकालबोधक अधिकार से किसी तरीके से प्राप्त हुई हो।

धारा 93-स्त्रीधन-पत्नी की अमानत इस कोड के आरम्भ होने के बाद किसी विवाह के संस्कार सम्पूर्ण होने की अवस्था में कोई भी ऐसा स्त्रीधन (डावरी या दहेज) जो कि उस विवाह प्रसंग पर अथवा उसकी किसी शर्त के रूप में या उसके सम्बन्ध में एक उपहार के रूप में दिया गया है वह उस स्त्री की सम्पत्ति समझा जायेगा जिसका कि इस प्रकार विवाहसंस्कार सम्पन्न किया गया है।

ANNEXURE II

1349

(2) जहां ऐसी स्त्री के अतिरिक्त कि जिसका इस प्रकार विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया है किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई स्त्रीधन प्राप्त किया जाता है, तो उस अवस्था में ऐसे व्यक्ति को वह अपने पास उस स्त्री के लाभ तथा व्यक्तिगत उपयोग के लिए एक अमानत के रूप में रखना होगा तथा जब वह स्त्री अपनी आयु का 18वां वर्ष पूरा करे तब दे देना होगा और यदि वह अपनी आयु की उक्त अवधि पूरी करने से पहले ही मर जाए तो भाग 7 में निश्चित किये गये उस के उत्तराधिकारियों के नाम परिवर्तित कर देना होगा। इन धाराओं में निर्दिष्ट वस्तु गंभीरता से विचार योग्य है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञीश्वश्रु वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

10/85/45

यथा सिन्धुनदीनां साम्राज्यं सुपुवे वृषा । एवं त्वं सम्राज्ञेधि पत्युरस्तं परेत्य।

(अथर्व. 14/1/43)

वेदों में पत्नी का स्थान बहुत उच्च माना गया है तथा उस के लिए अनेक वेद मन्त्रों में सम्राज्ञी शब्द का प्रयोग किया गया है जिस का अर्थ सम्+राज्ञी अपने गुणों से भली भाँति चमकने वाली और रानी होता है।

यह मन्त्र इस विषय में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। सम्+राज्ञी का अर्थ सम्=मिलकर (पति से मिलकर) अथवा उसके साथ राज्य करने वाली यह भी होता है। इन मन्त्रों में नव वधू को सम्बोधित करते हुए घर की सम्राज्ञी बनने का आदेश व आशीर्वाद दिया गया है और अपने श्वसुर, देवर, ननद, सास आदि सब सम्बन्धियों को सद्व्यवहार से प्रसन्न करने अथवा अपने गुणों से चमकने का उपदेश दिया गया है। 'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः।' (ऋ. 10/85/16) तथा 'अस्मिन् गृहे गार्दपत्याय जागृहि' (ऋ. 10/85/27) इत्यादि मन्त्रों में भी स्त्री को गृह पत्नी अथवा घर की स्वामिनी बनने का उपदेश व आदेश है। 'आशसाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । पत्युरनव्रता भूत्वा संनह्यस्वामृताय कम् ॥' अथर्व (14/1/42) 'रथा सहस्य वर्चसा, इमौ स्तामनुपक्षितौ' (अ. 3/78/2) इत्यादि मन्त्रों में भी वधु को कहा गया है कि तुम पति से प्रेम, प्रसन्नता, सन्तान, सौभाग्य, ऐश्वर्य की कामना करती हुई उसकी अनुव्रता हो कर सुख प्राप्त करो। ये दोनों (पति-पत्नी) सब प्रकार से धन से भरपूर हों। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद स्त्रियों के प्रति उच्च भाव दर्शाते हुए उनका पति की सम्पत्ति तथा समस्त सुख साधनों में समान अधिकार का निर्देश करते हैं।

मध्यकालीन साहित्य में स्त्रियों की स्थिति को हम अनेक अंशों में गिरा हुआ पाते हैं। 'अनृतं स्त्री', 'निरिन्द्रिया ह्यमंत्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः॥' तथा 'विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी' (श्री शंकराचार्य कृत प्रश्नोत्तरी) इत्यादि वाक्य हमें उस काल की अनेक स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में दिखाई देते हैं जिनमें स्त्रियों को अविश्वसनीय, असत्यस्वरूपिणी तथा अशुभा मानकर उनको सर्वथा अस्वतन्त्र तथा शूद्र व दासी समान माना गया है, किंतु ऐसे वेद विरुद्ध वचनों को चाहे वे किसी भी मुनि के नाम पर निर्मित

ग्रंथ में पाये जाएँ, मानने से हमें सर्वथा इन्कार कर देना चाहिए क्योंकि वेद विरुद्ध होने के अतिरिक्त वे न्याय बुद्धि के भी विपरीत हैं। दुःख की बात यह है कि ऐसे स्त्रियों के प्रति हीनता और अविश्वास सूचक भाव लोगों के हृदयों में घर किए हुए हैं और इन विषयों पर जब कभी विचार किया जाता है तो प्रायः पुरुषों के मुख से इस प्रकार के अविश्वाससूचक वाक्य ही निकलते हैं। जैसे कि मैंने इन दिनों अनेक सुशिक्षित महानुभावों से भी बातचीत करके देखा है।

स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से विचार करते हुए हमें स्त्रीधन के स्वरूप को समझ लेने की आवश्यकता है। जिस पर प्रायः सभी स्मृतिकारों ने पूर्ण अधिकार स्वीकार किया है। मनुस्मृति 9/194 में स्त्रीधन का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं, दत्तं प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृ पितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रियधनं स्मृतम् ॥

अर्थात् विवाह के समय में अग्नि के समक्ष जो धन स्त्री को दिया जाता है, पति के गृह से जब पिता के घर स्त्री जाती है उस समय श्वशुरादि से जो प्राप्त होता है, पति द्वारा जो प्रेमोपहार रूप में दिया जाता है तथा भाई, माता और पिता द्वारा समय पर जो कुछ प्राप्त होता है, यह 6 प्रकार का स्त्रीधन माना जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति 2/143 में ‘पितृ मातृ पति भ्रातृदत्त मध्यग्न्युपागतम् अधिवेदनिकाद्य च, स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥’ इस श्लोक में स्त्रीधन का स्वरूप प्रायः मनुस्मृति के समान ही बताते हुए आदि शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसकी व्याख्या में विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा टीका में लिखा है कि ‘आद्य शब्देन रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमप्राप्तमेतन् स्त्री धनं मन्वादिभिरुक्तम्।’ (याज्ञवल्क्य स्मृति मिताक्षरा, सुबोधिनी बाल भट्टयादी टीका सहित मद्रास पृ. 842) अर्थात् आदि शब्द से दाय भाग, खरीद बंटवारा, लाभ तथा अन्य प्रकार से प्राप्त धन, ग्रहण है।

नारदस्मृति में भी ‘अध्यग्न्यध्यावाहनिकं, भर्तृदायस्तथैव च ! भ्रातृदत्तं पितृभ्यांच, षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥’ (ना. स्मृ. 13/8) इन शब्दों में मनुस्मृति के समान स्त्रीधन का स्वरूप बताया गया है। भर्तृदाय शब्द का स्पष्ट रूप से वहाँ प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ पति द्वारा प्रदत्त है।

इस स्त्रीधन पर स्त्रियों का पूर्ण अधिकार प्रायः स्मृतिकारों तथा महाभारतकार ने स्वीकार किया है, महाभारत 18/1 में कहा है :

स्त्री धनस्पेशिनी स्त्री स्याद, भर्ताच तदनुज्ञया । भोक्तु ‘रक्षयितु’ ‘योम्यो भर्तु’ नाशयितु न च ॥

अर्थात् स्त्रीधन की स्वामिनी स्त्री है। उसकी अनुमति से ही पति विशेष अवस्थाओं में उसका उपयोग कर सकता है अन्यथा नहीं। यहाँ तक कि इस विषय में लिखा है:

‘न भर्ता नैवं च सुतो न पिता भ्रातरों न च । आदाने वा विसर्गे वा, स्त्रीधने प्रभविष्णवः ॥’

ANNEXURE II

1351

अर्थात् स्त्रीधन को लेने और उसको बेचने आदि का अधिकार पति, पुत्र, पिता, भ्राता आदि किसी को भी नहीं है।

सौदायिक धन का लक्षण शुक्रनीति 4/793 में इस प्रकार किया गया है :

ऊढया कन्यया वापि, पत्युः पितृगृहेऽपिवा। भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्बा, लब्धं सौदायिकं स्मृतम् । (स्मृतिसार 60, स्मृति चन्द्रिका 282, पराशर माधवीय 549)

अर्थात् विवाहिता अथवा अविवाहिता कन्या पति व पिता के घर से अथवा भाई और माता-पिता के पास से जो कुछ प्राप्त करती है उसे सौदायिक कहते हैं। उस सौदायिक धन के विषय में शास्त्रकारों ने कहा है :

सौदायिकं धनं प्राप्य, स्त्रीणां स्वातंत्र्यमिष्यते। यस्मात्तदातृशंस्यार्थं, तैर्दत्तमुपजीवनम् ॥

सौदायिके सदा स्त्रीणां, स्वातंत्र्यं प्ररिकीर्तितम्! विक्रये चैव दाने च, यथेष्टं स्थावरेष्वपि॥

(शुक्रनीति 4/792-93 कात्यायनस्मृति, दायभाग 76, स्मृति चन्द्रिका 282, पराशर माधवीय 549)

अर्थात्, सौदायिक धन में स्त्रियों को सदा पूर्ण स्वतन्त्रता है। उसको बेचने और दान करने का और स्थावर सम्पत्ति-भूमि आदि के विषय में भी यथेष्ट व इच्छानुसार कार्य करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-7)

सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार

(उत्तरार्ध)

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में स्त्रियों के सम्पत्ति विषयक अधिकार के विषय में इस लेख के पूर्वार्ध में उद्धृत धाराओं में जो कुछ कहा गया है वह इन श्लोकों में दिए भाव के सर्वथा अनुकूल है अतः इन प्रस्तावों को शास्त्रविरुद्ध बताना सर्वथा असत्य प्रमाणित होता है। किन्तु इस विषय में स्मृतिकारों का भी परस्पर मतभेद अवश्य है, विशेषतः इस विषय में कि विधवाओं का पति की चल और अचल सम्पत्ति में अधिकार सीमित होना चाहिए अथवा पूर्ण। उदाहरणार्थ नारद स्मृति में लिखा है:

भर्त्रा प्रीतेन यद्वत्तं, स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपितत्।

सा यथा काममशनीयाद् दद्याद्वा स्थावराद्वते ॥

(नारद स्मृति-व्यवहार मयूख पृ. 97 में उद्धृत वचन)

अर्थात् पति ने पत्नी को प्रेमपूर्वक जो कुछ दिया हो उसके मरने पर वह उस धन का इच्छानुसार उपयोग करे अथवा उसे दान दे किन्तु स्थावर या अचल सम्पत्ति के विषय में उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

एक दूसरे स्थान पर भी 2/144 में नारद ने यही बात कही है:

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती गुरौ स्थिता।

भुञ्जीतामरणात्क्षान्ता दायादा ऊर्ध्वमाप्नुयुः ॥

अर्थात् पुत्र रहिता पवित्रचरण वाली विधवा क्षमाशीला होकर मरणपर्यन्त पति की सम्पत्ति का उपभोग करे। उसके पश्चात् वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिले।

महाभारत अनुशासन पर्व 47/23-24 में लिखा है :-

त्रिसहस्रपरोदायः, स्त्रियै देयो धनस्य वै।

भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति ।

स्त्रीणां च पतिदायाद्यम्, उपभोगफलं स्मृतम् ॥

अर्थात् पति को चाहिये कि वह पत्नी को 3000 से अधिक कार्षापण (एक सिक्का जिसका ठीक परिणाम हमें अभी तक ज्ञात नहीं हो सका) दायरूप में दे दे और वह पति के दिये उस धन का यथोचित रूप से उपभोग कर सकती है। पति का दिया धन व सम्पत्ति उपभोग फल अर्थात् जीवितकाल तक उपयोग के लिये ही है।

यही बात कौटलीय अर्थशास्त्रकार ने-

‘अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनम् आ आयुः क्षयाद् भुञ्जीत । अपदर्थं हि स्त्रीधनम् । ऊर्ध्वं दायादं गच्छेत् ॥ कौ. 3/2 में कही है।

इसमें भी विधवा को आयुपर्यन्त पति की सम्पत्ति के भोग का अधिकार दिया गया है। इसके पश्चात् वह उसके उत्तराधिकारियों को मिले। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/16 की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर का पुत्र रहित पति की सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार—

‘तस्मादपुत्रस्य स्वर्यातस्यासंसृष्टिनी धनं परिणीता स्त्री संयता सकलमेव गृहाति।’

इन शब्दों द्वारा प्रकट किया है। अर्थात् पुत्ररहित, सम्मिलित कुटुम्ब से विभक्त पति की संयमशीला साध्वी पत्नी सारा धन संग्रह करती है।

इस प्रकार स्मृतिकारों तथा निबन्धकारों का परस्पर मतभेद इस विषय में स्पष्ट है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से भी इस पर विचार आवश्यक है।

जो लोग हिन्दू कोड बिल में वर्णित धाराओं के विरोधी हैं उनमें से अधिकतर लोगों का यह कहना है कि स्त्रियाँ सम्पत्ति का प्रबन्ध करने में असमर्थ होती हैं अतः उनको पूर्णाधिकार देना ठीक न होगा। इस से न केवल उनको, प्रत्युत उन के कुल को भी हानि होगी। वस्तुतः यह बात अनुभव के आधार पर सत्य नहीं प्रमाणित होती। बम्बई में जहां कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में पूर्णाधिकार प्राप्त है, कहा जाता है कि, उन्होंने सम्पत्ति के प्रबन्ध में पुरुषों से भी अधिक योग्यता का प्रायः परिचय दिया है। एक बात प्रस्ताव के विरुद्ध यह कही जाती है कि स्त्रियों में केवल 3 प्रतिशत शिक्षिता हैं, शेष 97 प्रतिशत अशिक्षित हैं। अतः इस प्रकार का अधिकार देना उनके लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा। यह युक्ति कुछ अंश तक ठीक प्रतीत होती है, किंतु इसके अनुसार पुरुषों में से भी केवल 10 प्रतिशत के लगभग शिक्षित और शेष अशिक्षित हैं अतः उन 90 प्रतिशत लोगों को भी वह अधिकार न देना चाहिए। हिन्दू विश्व विद्यालय काशी के एक सुयोग्य उपाध्याय डॉ. अनंत सदाशिव अलतेकर ने अपनी पुस्तक (The position of women in Hindu civilisation) में यह सुझाव रक्खा है कि स्त्रियों को सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार देने के लिए शिक्षा का मानदण्ड नियत कर देना चाहिए। उस शिक्षा योग्यता से सम्पन्न महिलाएं ही उस अधिकार का उपयोग कर सकें, अन्य नहीं। यह प्रस्ताव मुझे भी उपादय प्रतीत होता है इससे यह अवश्य होगा कि जो युक्ति अशिक्षिता होने के कारण स्त्रियों के ठगे जाने की दी जाती है वह निर्बल हो जाएगी। किन्तु उस अवस्था में क्या पुरुषों के अधिकार पर भी ऐसा प्रतिबन्ध लगाना न्यायसंगत न होगा?

एक भय यह प्रकट किया जाता है कि यदि विधवाओं को पति की चल, अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति में पूर्णाधिकार दिया जाएगा तो इसका दुरुपयोग होने की संभावना बहुत अधिक है। अतः एक प्रस्ताव यह किया जाता है। जैसे कि श्री चांदकरण शारदा जी ने हिंदू ला कमेटी के सामने साक्षी देते हुए किया था, कि चल सम्पत्ति में स्त्रियों को पूर्णाधिकार दिया जाय किन्तु अचल सम्पत्ति में अधिकार जिससे वह उस परिवार में ही रहे। यह प्रस्ताव भी मुझे उत्तम और स्वीकरणीय प्रतीत होता है यद्यपि उपर्युक्त संभावना इससे सर्वथा दूर हो जाएगी ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक प्रस्ताव यह भी है कि जहां सन्तान तथा अन्य उत्तराधिकारी न हों वहीं विधवाओं को पति की सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार दिया जाए अन्यथा नहीं। मुझे तो इसकी अपेक्षा भी पूर्वोद्धृत प्रस्ताव ही

कि पति की चल सम्पत्ति में शिक्षित विधवाओं का पूर्णाधिकार हो वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। आजकल जब कि नैतिक मर्यादा शिथिल हो रही है और धूर्त वंचकों का जाल सर्वत्र फैला हुआ प्रतीत होता है, क्या यह अच्छा न होगा कि इस विषय में अधिक सावधानी से काम लिया जाए? कुछ घरों तक उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार बने कानून का परिणाम देखने के पश्चात् इस में आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। इस विषय में अत्यधिक शीघ्रता की आवश्यकता नहीं। आशा है विचारशील समाजहितैषी इस विषय पर गम्भीरता से विचार करेंगे।



(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-8)

स्त्रियों के दायभागधिकार

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार विषयक धाराओं पर शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विचार करने के पश्चात् अब मैं हिन्दू कोड बिल की धारा 100 में उस अंश पर कुछ विचार करना चाहता हूँ जिसमें किसी वसीयतहीन मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के बंटवारे के सम्बन्ध में नियम बतलाते हुए यह कहा गया कि 'प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के हिस्से के बराबर होगा' ।

निस्सन्देह यह अत्यधिक विवादास्पद धारा है जिसके विरुद्ध आंदोलन भी सबसे अधिक किया जा रहा है । यहां तक कहा जा रहा है कि यह सब मुसलमानी प्रथा है जिसे हिंदुओं पर लादने का यत्न हो रहा है । इस गम्भीर विषय पर पहले मैं शास्त्रीय दृष्टि से कुछ विचार विद्वानों के समक्ष रखना चाहता हूँ । इसके पश्चात् व्यावहारिक दृष्टि से भी इस पर विचार किया जायेगा । जिस रूप में यह धारा प्रस्तुत कोड बिल में रखी गई है कि 'प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के बराबर होगा' मैं उस रूप के पक्ष में नहीं हूँ । तथापि यह आवश्यक है कि इन कन्याओं के पैतृक सम्पत्ति में अधिकार की प्रथा का मुसलमानी, सर्वथा अशास्त्रीय तथा धर्मविरुद्ध प्रथा कहने से पूर्व, हम इस पर निष्पक्ष होकर विचार करें और इसमें परिवर्तनार्थ उचित संशोधन प्रस्तुत करें ।

पुत्रियों का पैतृक सम्पत्ति में अधिकार होना चाहिए या नहीं, यदि हां तो किनका और कितना इस पर हमें शास्त्रीय दृष्टि से पृथक् विचार करना उचित होगा । सबसे पूर्व मैं अविवाहित तथा विवाह न कराने वाली पुत्रियों के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करूंगा । उसके पश्चात् पिता की एकमात्र पुत्री के सम्बन्ध में और अन्त में विवाहिता पुत्रियों के सम्बन्ध में ।

ऋग्वेद 2/17/7 में निम्न मंत्र आया है :

“अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् । कृधि प्रकेतमुपमास्याभर तद् मे भागं तन्वो येन मामहः ॥ इस मन्त्र का श्री सायनाचार्य आदि सब भाष्यकारों ने इस प्रकार भाष्य किया है—

हे इन्द्र अमाजू :-यावज्जीवं गृह एव जीर्यन्ती पित्रोः सचा-माता-पितृभ्यां सह भवन्ती तयोः शुश्रूषणपरा पतिमलभमानः सती दुहिता (समानात्) आत्मनः पित्रोश्च साधारणात् (सदसः) गृहात्।

गृह उपस्थामव यथा भागं याचति तथा स्तोताहं भगं भजनीयं धनं स्वामिये, त्वां याचे ॥”

इस का तात्पर्य यह है जिस प्रकार जीवनपर्यन्त माता-पिता के घर में भी रह कर अपने भाग को माता-पिता से मांगती है वैसे ही मैं स्तोता तुझ इन्द्र (परमेश्वर) से सेवनीय ऐश्वर्य की प्रार्थना करता हूँ । 'धर्मकोष' के सम्पादक पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ ने इस वेद मन्त्र को व्यवहार काण्ड उत्तरार्द्ध पृ. 1415 में उद्धृत करते हुए उसका शीर्षक यह दिया है, 'अनूढ दुहिता पैतृभागहारिणी पुत्री पैतृक संपत्ति में भाग ग्रहण करने की अधिकारिणी होती है ।'

इस विषय में सम्भवतः किसी भी विचारशील व्यक्ति का मतभेद न होगा कि जो किसी भी विशेष उद्देश्य से सुलभा, गार्गी आदि, की तरह नैतिक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करें अथवा अन्य किसी कारण से विवाह न करें उनको पैतृक संपत्ति में से भाग मिलना चाहिए।

सुप्रसिद्ध निरुक्त के प्रणेता श्री यास्काचार्य ने निम्नलिखित वेद मन्त्र पुत्रियों के दाय भाग के सम्बन्ध में उद्धृत किया है—

“शासद्वन्द्दिदुहितुर्नर्त्यागाद् विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।

पिता यत्र दुहितुः सेकमृजन्, संशगम्येन मनसादधन्वे ॥”

(ऋ. 3/31/1)

इस मन्त्र को उद्धृत करने से पूर्व श्री यास्काचार्य ने लिखा है :

“अथैता दुहितृ दाय्याद उदाहरन्ति पुत्रदायाद इत्येके।”

इसके भाष्य में दुर्गाचार्य ने लिखा है :

“एनां ऋचं शासद् वह्निः इत्यादी या वक्ष्यमाणा ता दुहितुर्दायादे अर्थ उदाहरन्ति धर्मविदः। अस्याम् ऋचि वक्ष्यमाणायां दुहितुरपि दाय्याद्यत्वमस्तीति दृश्यते ।”

अर्थात् शासद् वह्निः इस ऋचा को जानने वाले पुत्री को दाय भाग का अधिकार है, एस अर्थ में उद्धृत करते हैं । इस ऋचा से ज्ञात होता है कि पुत्री को भी दाय भाग का अधिकार है।

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए श्री यास्काचार्य ने लिखा है :

विद्वान् ऋतस्य दिमितिं सपर्यन् विधानं पूजयन् अर्थात् वेद के विधान का आदर करता हुआ । वह वेद का विधान क्या है इसका यास्काचार्य जी ने आगे इस प्रकार प्रतिपादन किया है जो प्रस्तुत विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है :

अविशेषेण मिथुनाः पुत्रा दाय्यादा इति । तदेतदृक् श्लोकाभ्यामभिहितम् अङ्गवङ्गात् संभवसि हृदयादधि जायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ इति ॥ अविशेषेण पुत्राण ां दायो भवति धर्मतः १ मिथुनानां विसर्गादौ मनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

अर्थात् पुत्र और पुत्री दोनों को दायभाग का अधिकार है जैसे कि निम्नलिखित ऋचा में और श्लोक में बताया गया है, जिनका अर्थ यह है कि पुत्र को सम्बोधित करते हुए जो यह कहा जाता है कि तू अङ्ग-अङ्ग और हृदय से उत्पन्न होता है अतः मेरी आत्मा के तुल्य है तू सौ वर्षों तक जी, यह पुत्र पुत्री दोनों पर समान रूप से लगता है, यह वचन शत पथ ब्राह्मण 14/9/4/6, साम ब्राह्मण 1/5/17 वृहदारण्यकोपनिषद् 6/4/26, कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् 2/11, पारस्कर गृह्यसूत्र 1/16/18, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र 2/3/2 इत्यादि में पाया जाता है । इसी के समान निम्न वचन मनुस्मृति 9/130 में है—

यथैवात्मा तथा पुत्रः, पुत्रेण दुहिता समा । तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥

अर्थात् पुत्र अपनी आत्मा के समान होता है पुत्री पुत्र के समान होती है । उस आत्मातुल्य पुत्री के होते हुए अन्य कैसे धन ले सकता है ?

महाभारत अनुशासन पर्व 45/11 में मनुस्मृति का उपर्युक्त श्लोक ही उद्धृत किया गया है । दूसरा श्लोक जो निरुक्तकार यास्कमुनि ने स्वायम्भुव मनु के विषय में उद्धृत किया है उसका अर्थ यह है कि स्वायम्भुव मनु ने अविशेष या सामान्य रूप से पुत्र और पुत्री दोनों का धर्मानुसार दाय भाग में अधिकार होता है ऐसा सृष्टि के प्रारम्भ में बताया । स्वायम्भुव मनु का ऐसा मत वेद के आधार पर ही होना चाहिए इसलिए निरुक्तकार ने 'शासद वह्निर्दुहितुः' इस मन्त्र को उद्धृत किया है ।

निरुक्तकार का मत स्पष्टतया लड़कियों के दाय भाग के अधिकार के पक्ष में ज्ञात होता है यद्यपि 'न दुहितर इत्येके' यह लिख कर उन्होंने दूसरा पक्ष उन लोगों का रखा है जो यह कहते हैं कि लड़कियों का दाय भाग में अधिकार नहीं है । यह लिखने की आवश्यकता कि "स्त्रियाः दानविक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः" अर्थात् स्त्रियों का दान किया जाता है, उन्हें बेचा जाता है और उनका इच्छानुसार त्याग कर दिया जाता है अथवा "तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम्" अर्थात् स्त्री (कन्या) के उत्पन्न होने पर उसे फेंक दिया जाता है पुरुष (बालक) को नहीं, ऐसी लचर युक्तियां देकर जो यह सिद्धांत बनाते हैं कि "तस्मात् पुमान् दायदः अदा यादा स्त्रीति विज्ञायते ।" अर्थात् पुरुष को ही दाय भाग का अधिकार है स्त्री को नहीं, उसकी अपेक्षा हमें निरुक्तकार यास्काचार्य का अपना मत अधिक उपादेय प्रतीत होता है । 'शासद् वह्निर्दुहितं कम करेंः' यह ऋ. 3/31 का प्रथम मन्त्र जब पुत्री के दाय भाग के अधिकार का समर्थन है तो उसी सूक्त के दूसरे मन्त्र 'न तान्वो जामये' का ठीक विरुद्ध अर्थ खींचातानी से लगाना हमें संगत प्रतीत नहीं होता । उसमें बहुत अधिक खींचातानी दाय भाग विरोधियों को करना पड़ता है । 'मातरः' का अर्थ माता-पिता 'वह्नि' का अर्थ पुरुष करके उसके साथ जबरदस्ती अवन्धि जोड़ कर स्त्री, एक शुभ कर्म का कर्ता अर्थात् पिण्ड देने वाला पुरुष और दूसरी केवल अलंकृत होने वाली स्त्री इत्यादि अर्थ कल्पित करने पड़ते हैं । निरुक्तकार ने अपना पक्ष पहले दिखा कर इस पक्ष का निर्देश मात्र कर दिया है । महर्षि दयानन्द जी ने इसकी व्याख्या अग्नि, विद्या तथा सन्तान रक्षादि के सम्बन्ध में की है, जिसका भगिनी को भाग न देने से कोई सम्बन्ध नहीं । वेद में इस प्रकार एक ही सूक्त में परस्पर विरुद्ध दो आदेश हैं, यह कौन वेद प्रेमी स्वीकार कर सकता है ? सायणाचार्य आदि भाष्यकार क्योंकि पौराणिक विचारों के थे अतः उन्होंने स्पष्ट लिख दिया कि पिण्डदानादिकर्तृत्वात् पुत्रोदायार्हः दुहिता तथा नेति न दायार्हा' [3/31/2 सायण भाष्य] अर्थात् पुत्र क्योंकि मृत पितरों को पिण्ड देता है इसलिए वह दाय भाग का अधिकारी है परन्तु पुत्री पिण्ड नहीं देती इसलिए उसको दाय भाग का अधिकार नहीं । ऐसी ही बात प्रायः सभी पौराणिक भाष्यकारों ने लिखी है । कइयों ने स्त्रियों के प्रति अत्यन्त तुच्छ भाव प्रकट करते हुए उनका दाय भाग में अनधिकार माना है । जैसे कि सरस्वती विलासकार ने 363 पृ. में लिखा है, "स्त्रीयां दाय विभागो नास्ति निरिन्द्रियत्वात्" अर्थात् स्त्रियों का दाय विभाग में अधिकार इसलिए नहीं क्योंकि वे इन्द्रियशून्या होती हैं ।

पण्डित सदायतन पाण्डेय प्रधान संयुक्त प्रांतीय धर्मसंघ ने राव कमेटी के सम्मुख साक्षी देते हुए पुत्रियों के दाय भाग में विरुद्ध यही युक्ति दी । लड़की को जो पिता के श्राद्ध तथा पिण्ड-दान आदि में कोई भाग नहीं लेती लड़के के साथ जिसको इन कर्तव्यों का पालन करना होता है दाय भाग में अधिकार देना सर्वथा अनुचित होगा (देखो हिन्दू ला

कमेटी रिपोर्ट पृ. 130) महामहोपाध्याय चिन्नस्वामी शास्त्री आदि ने इलाहाबाद में अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा की ओर से साक्षी देते हुए यही कहा कि लड़कियों को, जो अपने पिता का श्राद्ध नहीं करती पैतृक सम्पत्ति में कोई भाग न मिलना चाहिए । (रावकमेटी रिपोर्ट पृ. 129) इस प्रकार की निस्सार युक्तियां जो पौराणिक विचारों पर आश्रित हैं कहां तक ठीक हैं यह विचार-शील सज्जन स्वयं निर्णय करें ।

पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ ने बहिन के भाई के साथ दाय्यादि में भाग लेने के विषय में निम्न वेदमन्त्र को धर्मकोष, व्यवहार काण्ड, उत्तरार्द्ध के पृ. 1415 में उद्धृत किया है :

“एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुपस्व ।” (शुक्ल यजुर्वेद 3/57 कण्व संहिता 7/6, मैत्रायणी संहिता 1/10/4, तैत्तिरीय संहिता 18/6/1, शतपथ ब्राह्मण 2/6/2/9)

यहां भी बहिन के भाई के साथ दाय्यादि में भाग का स्पष्ट निर्देश है।

“अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।” इस मंत्र में जिसकी निरुक्त 3/4 में व्याख्या की गई है अभ्रातृका कन्या का पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने का स्पष्ट निर्देश है जिसका प्रायः सब स्मृतियों में भी समर्थन किया गया है जैसे कि अगले लेख में उद्धृत स्मृत्यादि वचनों से पाठकों को ज्ञात हो जायेगा ।

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-9)

स्त्रियों का दायभाग और स्मृतियां

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

अब मैं इस सम्बन्ध में प्राप्त होने वाले स्मृत्यादि ग्रन्थों के वचनों को विद्वानों के सम्मुख रखना चाहता हूँ ।

मनुस्मृति 9/118 में निम्न श्लोक पाया जाता है :

स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भातरः पृथक् । स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं, पतितः स्युरदित्सवः ॥

(मनु. 9/118)

अर्थात् भाइयों को चाहिए कि अपने अपने हिस्से में से चतुर्थ भाग वे पृथक् भाग वे पृथक् 2 कन्याओं अर्थात् अपनी अविवाहित भगिनियों को दें । जो न देना चाहें वे पतित समझे जाएं ।

इस वचन में कन्याओं का लड़कों से चतुर्थ भाग लेने को अधिकार स्पष्ट तथा प्रतिपादित है।

याज्ञवल्क्य स्मृति 2/12 में भी यही बात

असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्णसंस्कृतैः । भगिन्यश्व निजावंशाददृत्वांशं तु तुरीयकम् ॥

इस श्लोक द्वारा कही गई है । इस श्लोक की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश ने लिखा है कि ‘अनेक दूहितरोपि पितुरुर्ध्वमंशभागिन्य इति गम्यते । अर्थात् इससे ज्ञात होता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रियों का भी दाय भाग में अधिकार है । इसी टीका में आगे लिखा है कि “नच निजादंशाद् तुरीयकम् इति तुरीयांशविवक्षया संस्कार मात्रोपयोगि द्रव्यं दत्वेति व्याख्यान युक्तम् । मनुवचन विरोधात् । तस्मात् पितुरुर्ध्वं कन्याप्यंशभागिनी पूर्वं चेद्यत् किञ्चित् पिता ददाति तदेव लभते विशेषवचनाभावादितिसर्वमनवद्यम् ।”

(मिताक्षरा टीका).

अर्थात् यहां भगिनी को चौथा हिस्सा देने का जो विधान है उसका यह अर्थ न समझा जाए कि संस्कार के उपयोगी द्रव्य से ही यहां प्रयोजन है, चतुर्थ भाग देने से नहीं क्योंकि ऐसा मानने से मनुस्मृति (9/118) के वचन से विरोध हो जाएगा । इस लिए यह स्पष्ट है कि पिता की मृत्यु के बाद कन्या का भी उसकी सम्पत्ति में अधिकार है । जीवित काल में तो पिता कन्या को जो कुछ देता है वह उसे प्राप्त करती है । विश्वेश्वर भट्टप्रणीत मदन पारिजात नामक सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य स्मृति के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए स्पष्ट लिखा है कि “भगिन्यश्च इत्यादेस्यं तात्पर्यार्थः । भगिनीनामसंस्कृतानां विवाहं कृत्वा ताभ्यश्चतुर्थमंशं दद्यात् ।” (मदन पारिजात 648) अर्थात् ‘भगिन्यश्च’ इत्यादि याज्ञवल्क्य वचन का तात्पर्य यह है कि अविवाहिता भगिनियों का विवाह संस्कार करा कर फिर उनको अपने भाग का चौथा हिस्सा दे ।

जो लोग यह मानते हैं कि भगिनी को चतुर्थ अंश केवल विवाह-संस्कारार्थ दिया जाता है, इस मत का खण्डन करते हुए मदनपारिजात में आगे लिखा है कि “केचन एवं मन्यन्ते, पूर्वोक्तरीत्या चतुर्थमंशं कन्यकायै दत्वा तेनैव विवाहः कर्तव्यो न तु समुदित द्रव्येण विवाहं कृत्वा पुनरपि चतुर्थांशदानमिति तन्मेधातिथिमिताक्षराकारादीनामनभिमतत्वादुपेक्षणीयम् ।” (मदन पारिजात 650) अर्थात् कई ऐसा मानते हैं कि पूर्वोक्त प्रकार कन्यों को अपना चौथा

हिस्सा देकर उसी से उनका विवाह करना चाहिए न कि एकत्रित व संयुक्त द्रव्य से विवाह करके फिर उनको चौथा हिस्सा देना चाहिए । यह मत मेधातिथि, मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर इत्यादि के विरुद्ध होने के कारण उपेक्षा करने योग्य है । व्यवहार काण्ड (देखो धर्मकोष पृ. 1420).

बालम्भट्टी नामक याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका में भी यही बात कही गई है कि “केचिदुक्तरी-त्यैव तुरीयमंशं कन्यायै दत्त्वा तेनैव विवाहः कार्यो न तु समुदितद्रव्येण विवाहोऽशदानं च पृथगित्याहुः। तन्मतं खण्डयति । न चेति एतेन देशाचाराद् व्यवस्थेतिमद नपारिजातायुक्तमपास्तम् ।” (बालम्भट्टी--धर्मकोष पृ. 1421) अर्थात् जो यह कहते हैं कि कन्या को उक्तरीति से चौथा भाग देकर उसी से विवाह करना चाहिए न कि संयुक्त द्रव्य से विवाह संस्कार करा कर चौथा भाग पृथक् देना चाहिए उनके मत का ‘नच’ इत्यादि के द्वारा मिताक्षराकार ने खण्डन किया है । मदन पारिजात ने अन्त में जो यह लिख दिया था कि ‘अथवा देशाचार से इसकी व्यवस्था हो जायेगी उसका भी इससे खण्डन हो जाता है ।

इस विषय को कुछ विस्तार में लिखने की आवश्यकता इसलिए हुई कि प्रायः पौराणिक पण्डित मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट प्रतिपादित चतुर्थ भाग देने का तात्पर्य केवल विवाह संस्कारार्थ बताकर टालमटोल का यत्न करते हैं उसकी निस्सारता और अयथार्थता विद्वानों को ज्ञात हो जाये । अब इस सम्बन्ध में अन्य स्मृत्यादि वचनों को देखिए ।

(7) नारद संहिता 14/13 में लिखा है :-

ज्येष्ठायांशोऽधिको ज्ञेयः, कनिष्ठायावरः स्मृतः । समांशभागः शेषाः स्युः, अप्रप्ता भगिनी तथा ॥ अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता को कुछ अंश अधिक देना चाहिए, सबसे छोटे को कम । शेष भाईयों और अविवाहिता बहिन को बराबर बांटना चाहिए ।

यहां अविवाहिता बहिन को पैतृक सम्पत्ति में से मध्य वाले भाइयों के बराबर भाग देने का विधान है ।

(8) कात्यायन स्मृति में निम्न श्लोक है : “कन्यकानां स्वदत्तानां; चतुर्थो भाग इष्यते । पुत्राणा च त्रयोभागाः, साम्यं स्वल्पधने स्मृतम् ॥” (देखो दाय भाग 69, स्मृति चन्द्रिका 268) अर्थात् अविवाहिता कन्याओं का पैतृक सम्पत्ति में चौथा भाग रहता है शेष पुत्रों का 3/4 । जब वह धन थोड़ा हो तो कन्याओं का भी पुत्रों के समान धन पर अधिकार रहता है ।

(9) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में लिखा है कि ‘तदभावे तु जननी, तनयांशसमांशिनी । समांशा मातरस्तेषां, तुरीयांशा च कन्यका ॥’ (दाय भाग 69 स्मृतिसार 57 वीर मित्रोदय 2/117 धर्मकोष पृ. 1413) अर्थात् पिता के मरने पर उसकी पत्नी का भाग अपने लड़कों के बराबर और कन्या का चौथा होना चाहिए ।

(10) विष्णुस्मृति 18/34, 35 में लिखा है : ‘मातःपुत्र भागानुसारेण भागहारिण्यः अनूदाश्च दुहितरः॥’ (दाय भाग 68, सरस्वती विलास 357) अर्थात् माता का भाग पुत्रों के अनुसार होता है और अविवाहिता पुत्रियों का भी एक अन्य स्थान पर जिसे सरस्वती विलास पृ. 361 और धर्मकोष, व्यवहार कांड, उत्तरार्द्ध पृ. 1416 में उद्धृत किया गया है। विष्णु ने कहा है कि ‘अनूढानामप्रतिष्ठितानामेवांशो दातव्यः।’ अर्थात् जो पुत्रियां अविवाहिता हों अथवा निर्धना व विधवा हों उन्हें पैतृक सम्पत्ति में से हिस्सा देना चाहिए।